

आलाप और तान की भूमिका में 'रस' का महत्व

डा० अनिल कुमार शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), सी०एस०एस०एस० (पी०जी०) कॉलेज, माछरा (मेरठ)।

Article Info

Volume 4, Issue 3

Page Number : 117-123

Publication Issue :

May-June-2021

Article History

Accepted : 01 June 2021

Published : 15 June 2021

सारांश— 'रस' शब्द का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति, साहित्य और संगीत से अनादि काल से जुड़ा हुआ है। यह मानव के अंतःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के चरमोत्कर्ष से उत्पन्न होता है अर्थात् जब कोई स्वाभाविक वस्तु अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर मन में असाधारण नवीनता पैदा कर देती है तब उसे 'रस' कहते हैं। 'भाव' से 'रस' की निष्पत्ति होती है इसलिए इसे 'भाव' के अधीन माना गया है। 'रसात्मकता' ही संगीत का प्राण है। 'भाव' तथा 'रस' की ही प्रधानता 'संगीत' में रहती है। 'रस' न केवल आध्यात्मिक जीवन में बल्कि लौकिक जीवन की महत्वपूर्ण रागात्मक वृत्ति है रस और सौन्दर्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। संगीत के क्षेत्र में स्थाई स्वर यानि अंश स्वर पर आश्रित समवादी स्वरों द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों से अभिव्यक्त माधुर्य की चेतना का 'रस' कहा गया है। अतः 'रस' एक विशेष प्रकार की आत्मतृप्ति है, आत्मसन्तोष है, जिसके प्रभाव में रजोगुण तमोगुण जैसे एक ऐसे सत्य का अनुभव कराते हैं। हमारे प्रचलित शास्त्रीय संगीत में राग प्रधान है। राग गायन में आलाप के अन्तर्गत भाव प्रदर्शन की प्रमुखता रहती है इसीलिए संगीत जैसी अमूर्त कला को रसोत्पत्ति, रसास्वादन का सशक्त साधन माना गया है। आलाप किसी भी राग को प्रस्तुत करने का प्रथम माध्यम है। प्राचीन काल में गायन को निबद्ध तथा अनिबद्ध इन दो प्रकारों में बाँटा गया था और उस समय का अनिबद्ध गान आज के आलाप-गायन के समान था। अतः संगीत श्रोताओं के हृदय में आलाप तान व बंदिश के माध्यम से रस सृष्टि करने में उचित योगदान देता है।

मुख्य शब्द— आलाप, तान, रस, काव्य, महाकाव्य, भाव, रसात्मकता, संगीत, मन।

'रस' शब्द का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति, साहित्य और संगीत से अनादि काल से जुड़ा हुआ है। यह मानव के अंतःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के चरमोत्कर्ष से उत्पन्न होता है अर्थात् जब कोई स्वाभाविक वस्तु अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर मन में असाधारण नवीनता पैदा कर देती है तब उसे 'रस' कहते हैं। 'भाव' से 'रस' की निष्पत्ति होती है इसलिए इसे 'भाव' के अधीन माना गया है। 'रसात्मकता' ही संगीत का प्राण है। 'भाव' तथा 'रस' की ही प्रधानता 'संगीत' में रहती है। डॉ० सुरेश ब्रत राय ने कहा है,

‘रस अनिवार्यतः अनुभवजन्य’, चाहे संगीत रस हो चाहे काव्य रस हो सभी अनुभूतिजन्य है। ‘रस’ न केवल आध्यात्मिक जीवन में बल्कि लौकिक जीवन की महत्वपूर्ण रागात्मक वृत्ति है यह एक समग्र, सम्पूर्ण मानसिक चेतना है जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है इसलिए ‘रस’ का मूलाधार ‘भा’ है। इसी भाव को कलाकार अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करता है तो दूसरों का सुख देता है आनन्द देता है वह ‘रस’ है। यही कारण है कि रस और सौन्दर्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध है।

पहले कोई भी कला, कोई भी वस्तु हमें सुन्दर प्रतीत होती है और हमें सुखानुभूति होती है, यही अनुभूति रस है। अतएव ‘रस’ मन की दशा कही गई है जैसा ‘पंडित बलदेव उपाध्याय’ ने भारतीय बाङ्मय में ‘श्रीराधा ग्रन्थ’ में उल्लेख किया है, ‘रस’ भाव की एक दशा है और वह भावमयी अवस्था एक अखण्ड, अनन्य मनोवस्था है। संगीत के क्षेत्र में स्थाई स्वर यानि अंश स्वर पर आश्रित समवादी स्वरों द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों से अभिव्यक्त माधुर्य की चेतना का ‘रस’ कहा गया है। अतः ‘रस’ एक विशेष प्रकार की आत्मतृप्ति है, आत्मसन्तोष है, जिसके प्रभाव में रजोगुण तमोगुण जैसे विषयगत विकार समाप्त होकर एक ऐसे सत्य का अनुभव कराते हैं जो शिव भी है सुन्दर भी है। अतः सत्यं शिवम् सुन्दरम् कहा भी गया है।

हमारा मानव मन बुद्धि तथा भावना दोनों से ही सम्बन्ध रखता है और इसीलिए कला की दृष्टि से संगीत में केवल भावना ही बुद्धि का स्थान भी सर्वोपरि है। विशेषकर हमारे प्रचलित शास्त्रीय संगीत में जो कि राग प्रधान है। राग प्रस्तुतीकरण में भाव पक्ष तथा कला पक्ष दोनों का ही महत्व है। भाव तथा कला, दोनों ही रस सृष्टि का आधार हैं। एक कुशल गायक अपने गायन द्वारा ऐसे वातावरणस की रचना करना चाहता है जिससे श्रोताओं को ऐसे ‘आनन्द’ की प्राप्ति हो जो अलौकिक हो तथा कार्य स्वरों का सहारा लेकर ही पूर्ण होता है अर्थात् जब कलाकार अपने व्यक्तित्व को संगीत में घोल देता है। क्योंकि दर्शकों में रसमय अवस्था उत्पन्न करना कलाकार का लक्ष्य होता है जो कलाकार जितनी जल्दी इस अवस्था को उत्पन्न करने में सहायक होता है वह उतना ही उच्च कलाकार माना जाता है।

आपालचारी को संगीत के भाव पक्ष के साथ तथा तान को कला पक्ष के साथ जोड़कर एक कलाकार अपने कला प्रदर्शन में स्वर्गीय आनन्द एवं चमत्कार प्रदर्शन दर्शकों को दे सकने में सक्षम रहता है। दूसरों शब्दों में भावपक्ष संगीत का आन्तरिक पक्ष है और कला पक्ष बाह्य।

राग गायन में आलाप के अन्तर्गत भाव प्रदर्शन की प्रमुखता रहती है जिसका सम्बन्ध हृदय से होता है और तान के अन्तर्गत कलापक्ष या चमत्कार प्रदर्शन का प्राधान्य रहता है जो बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। इसीलिए भक्तगण ऐसे माध्यम की तलाश करते हैं जहाँ रसानन्द स्वतः मिलने लगे जिसमें वह अपने समस्त

रजोगुणी ओर तमोगुणी विकारों से परे होकर केवल एक परम तत्व का अनुभव कर सके। इसीलिए संगीत जैसी अमूर्त कला को रसोत्पत्ति, रसास्वादन का सशक्त साधन माना गया है।

शास्त्रानुसार आलाप किसी भी राग को प्रस्तुत करने का प्रथम माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार राग के स्वरूप को श्रोता के समक्ष रखता है पं० भातखंडे ने कहा है, "हमारे गायक कोई भी गीत गाने के पहले उस गीत में लगने वाले राग स्वरूप का थोड़ा सा दिग्दर्शन कराते हैं। इसी को प्रचार में 'आलाप' कहते हैं। प्राचीन काल में गायन को निबद्ध तथा अनिबद्ध इन दो प्रकारों में बाँटा गया था और उस समय का अनिबद्ध गान आज के आलाप-गायन के समान था, जिसमें प्रारम्भ में बिना ताल तथा गीत के शब्दों के केवल राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों द्वारा आलाप किया जाता है।

पं० भातखंडे जी ने कहा है, "कि राग के आलाप में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होनी चाहिए ग्रह, अंश, न्यास, उपन्यास, तार स्थान विधि, मंद स्थान विधि, स्वरों का अल्पत्व तथा बहुत्व, राग का औडवत्व तथा बाडवत्व इत्यादि। इसीलिए प्राचीनकाल से लेकर आज तक भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों का आधार स्वर विस्तार, आलाप या आलापचारी अथवा प्राचीन रागालापि को माना गया। अतः किसी राग विशेष के स्वरों को जब शास्त्रीय नियमों (वर्जित, अवर्जित, कोमल, तीव्र) आदि स्वरों का पालन करते हुए नायक, विलम्बित लय में विस्तार करता है तब उसे स्वर-विस्तार या आलाप या आलापचारी कहा जाता है जिसका उद्देश्य राग-विशेष के स्वरूप को आकार देना है। संगीत का एक कलाकार किसी राग की बन्दिश को प्रस्तुत करने से पूर्व, उस राग के विशिष्ट स्वरों द्वारा पहले राग को आकृति प्रदान करता है अर्थात् रागमय वातावरण निर्मित करता है। हमारे यहाँ संगीत को सम्पूर्ण रूप से आध्यात्म से जुड़ा हुआ स्वीकार किया जाता रहा है और रागों को देवी-देवताओं के रूप में माना गया है। जिस प्रकार देवताओं का आवाहन करने के लिए पूजा-अर्जन, हवन आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं ठीक उसी प्रकार रागरूपी देवता का आवाहन करते के लिए उस राग विशेष के स्वरों का नियमानुसार धीरे-धीरे विस्तार करते हुए संगीत का ऐसा वातावरण बनाया जाता है, जिसमें रागरूपी देवता का अवतरण स्वतः होने लगता है। इसलिए शास्त्रीय संगीत में पहले रागालापि, फिर रागालाप, आलाप और स्वर विस्तार का महत्व आज भी मान्य है। राग का समस्त सौन्दर्य आकर्षण एवं रसात्मकता विभिन्न प्रकार के स्वरों के लगाव पर निर्भर है।

पं० रविशंकर के अनुसार कुछ राग विशिष्ट भाव स्थिति से जुड़े हुये होते रहते हैं जैसे ललित भक्ति प्रधान है, भैरव साधन का प्रतीक है तो मारवा वैराग्य भाव का सूचक है। बसंत व बहार बसंत-ऋतु के प्रतीक है तो मल्हार वर्षा ऋतु का। एक ही राग में अनेक रस निर्माण हो सकते हैं। कुशल गायक, वादक करुण, वीर आदि रागों में स्वर, लय की सहायता से शृंगार आदि रस का निर्माण कर सकते हैं।

आलाप के स्थायी भाग में मध्यसप्तक के षड्ज को भली-भाँति लगा देने के पश्चात् राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को मन्द्र-सप्तक में भिन्न-भिन्न तरह से विस्तार करते जाते हैं। मध्यसप्तक के निषाद तक विस्तार कर लेने के पश्चात् तार षड्ज का स्पर्श करते हुए मध्य सप्तक के षड्ज में आकर स्थायी का आलाप समाप्त करते हैं। यदि राग पूर्वांगवादी हुआ तो प्रायः वादी स्वर से ही आलाप का स्थायी भाग आरम्भ करते हैं। इसके पश्चात् आलाप का अंतरा-भाग मध्य सप्तक के गन्धार या पंचम के आरम्भ करके विभिन्न छोटे-छोटे स्वर समुदायों को लेते हुए आगे बढ़ते हैं और अधिकांश आलाप तार-सप्तक के षड्ज पर जाकर समाप्त करते हैं और फिर छोटे-छोटे मध्य षड्ज की ओर उतरते हुए आलाप का अन्तरा समाप्त करते हैं। पूर्वांगवादी रागों का आलाप-विस्तार पूर्वांग में तथा उत्तरांगवादी रागों का उत्तरांग में अधिक किया जाना चाहिए। इस तरह के गायन का जो परिणाम मन पर होता है उसे 'नाद मोह' कह सकते हैं वह अवर्णनीय होता है। राग सुगन्धित फूलों के समान है। फूलों की सुगन्ध से रस की उत्पत्ति नहीं होती फिर भी मन को एक प्रकार का अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होता है। मधुर संगीत-श्रवण के साथ-साथ मानसिक तनाव से मुक्ति मिलती है।

इस प्रकार राग गायन प्रस्तुत करने से पूर्व गायक राग का विस्तार करने के बाद तुरन्त ही बंदिश गाना प्रारम्भ करते हैं जिसके साथ ताल की संगत भी प्रारम्भ हो जाती है। बंदिश की स्थायी गा लेने के पश्चात् आलाप करना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु वह आलाप प्रायः गीत या बंदिश के शब्दों को लेकर किया जाता है, जिसे बोल आलाप कहा जाता है। आज गायन में बोलालाप का ही प्रचलन है। इस प्रकार कल्पना शक्ति द्वारा विभिन्न स्वर समुदायों में पिकर आलाप का विस्तार किया जाता है। आचार्य बृहस्पति ने भी कहा है—“राग में भाव प्रकाशन की शक्ति सीमित है परन्तु है अवश्य।”

गोविन्दराव है वे ने शुद्ध-विकृत स्वरों की स्थिति का विवेचन इस प्रकार किया है, “षड्ज अपरिवर्तनीय, एकाग्रचित योगी रूप है, कोमल ऋषभ की स्थिति अर्द्ध-निद्रावस्था जैसी है, शुद्ध ऋषभ की स्थिति पूर्ण जाग्रतावस्था जैसी है, कोमल गंधार करुणावस्था का है। शुद्ध गंधार की स्थिति एक चंचल बालक के समान प्रसन्नतापूर्ण है, शुद्ध मध्यम की स्थिति गम्भीर और शक्तिशाली है जो वातावरणकों प्रभावित करने में सक्षम हैं, तीव्र मध्यम भावुकतापूर्ण और चपलतापूर्ण है, पंचम आत्मविश्वासी और प्रसन्न है कोमल धैवत गहरी उदासी को व्यक्त करता है शुद्ध धैवत हृष्ट-पुष्ट वीर पुरुष के समान है, कोमल निषाद नम्र, प्रसन्न और स्नेही है साथ ही करुण भी है। यही वीरता, कारुण्य प्रसन्नता आदि संवेगों के लिए सहायक बन सकता है।”

इस प्रकार बोल आलाप ने ही आज के युग में आलाप का स्थान ग्रहण कर लिया है तो अश्लोक्ति नहीं होगी। क्योंकि इसमें बोल या शब्द या पद लेकर जो अवतारणा की जाती है उसके द्वारा निःसन्देह सौन्दर्य—सृष्टि होती है। प्राचीनकाल से ही संगीत (गान्धर्व) का स्वरूप स्वर ताल पदात्मक माना गया है। जिसमें स्वर लय और ताल के साथ पद का उतना ही महत्व है, क्योंकि स्वरों द्वारा रागात्मक अनुभूति जगाने की क्षमता तो है परन्तु पद का भाव रसानुभूति को और भी स्पष्ट कर देता है।

पदों के भाव ही व्यक्ति को रस की उस दशा तक पहुँचाता है जहाँ रजोगुण—तमोगुण दबकर सात्विक भाव जागृत हो जाता है। इसीलिए भजन—कीर्तन और विष्णु पदों का भक्ति संगीत में महत्व माना गया है। फिर स्वयं नारायण ने गीता में घोषणा की है,

“नाहं वलामि वैकुण्ठे, योगीनां हृदये न च,
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्रा निष्णभि नारद ।।”

इसलिए गायन, वादन और नृत्य में गायन की अधिक प्रधानता दी है क्योंकि गायन में स्वर आलाप, ताल के साथ पद भी शामिल है। जैसा श्रीमान् कान्त ने लिखा है—
‘‘चमतबमचजे पूजीवनज बवदबमचजहे तम
इसपदक दक बवदबमचजे पूजीवनज चमतबंचजे तम मउचजलष

‘तान’ का विस्तार राग गायन में चमत्कारिकता, बुद्धि कौशल बढ़ाना रहता है। पं० भातखंडे ने कहा है, ‘‘तानों का मुख्य प्रयोजन गायन का वैचित्र्य अधिकाधिक बढ़ाना ही है। तानें यदि योग्य रीति से वे योग्य प्रमाण से ली जाएँ, तो सुनने वालों को सचमुच आनन्द आता है।

जिस प्रकार कोई प्रसिद्ध वक्ता एक ही कल्पना भिन्न—भिन्न शब्दों से व भिन्न—भिन्न ध्वनियों द्वारा हाव—भावों से अपने श्रोताओं के सम्मुख रखकर उत्तम रीति से उनके मन पर प्रभाव डालता है। उसी प्रकार उत्तम गायक भिन्न—भिन्न स्वर समुदायों व भिन्न—भिन्न शब्दा रचनाओं से अपनी भावना की छाप दर्शकों के मन पर बैठाता है। मुख्य राग को शोभा देने वाली तानें ली जाएँ तो बहुत ही आनन्द आता।’’

तानों का प्रयोग चमत्कारवर्द्धक तो होता ही है, किन्तु यह चमत्कार गायक या वादक की सुरीलेपन की सीमा तक ही उत्पन्न किया जाना चाहिए तानों में नवीनता पैदा होनी चाहिए, इसके साथ राग का स्वरूप देखते हुए उसकी प्रकृति पर दृष्टि रखते हुए तानें गाई और बजानी चाहिए। ग्वालियर तथा रामपुर घराने में आलाप के साथ मध्य लय में छोटी—छोटी तानों को लेकर ‘बहलावा’ करने की पद्धति को स्वीकार किया जाता है। जो कि बड़े ख्याल में आलाप और तान के मध्य की स्थिति है जो इन दोनों को जोड़ने में सेतु का काम करती है। छोटे ख्याल की गति चपल होने के कारण उसमें चपल तानों का प्रयोग

सुन्दर प्रतीत होता है। कंठ में यदि मधुरता हो तो सरल तानों को अत्यन्त सरलता से सुर में गाया जाए तो वास्तविक आनन्द आता है।

पं० जगदीश नारायण पाठक के शब्दों में, “यदि सरल तानों द्वारा कंठ में मधुरता और सरलता ने स्थान बना दिया है तो गमक की तान हृदय में इस प्रकार चलती है जैसे जल में मस्त होकर मगर तैरता है और तान का प्रत्यक्ष आनन्द इस प्रकार होता है जैसे कि जलप्रताप की घोर-गर्जना और जल का कल-कल निनाद हो।”

निःसन्देह भारतीय शास्त्रीय संगीत का मूल आधार आलाप है क्योंकि इसी से राग की आकृति बन पाती है। यही संगीत का शुद्ध स्वरूप है। गायक-वादक अपनी कल्पना और योग्यता के अनुसार आलाप के द्वारा श्रोता वर्ग में रस की सृष्टि करता है। इसलिए प्राचीन संगीत में रागालाप-रूपकालाप आलापि और स्वस्थान के रूप में आलाप गायन की शास्त्रोक्त तकनीक पर जोर दिया गया।

जैसा कि डॉ० उभा गर्ग दिल्ली विश्वविद्यालय की संगीत प्रोफेसर ने उल्लेख भी किया है, “आलाप राग का आधार स्तम्भ है। इसी पर रागरूपी भवन टिका हुआ है। राग की आकृति बनी बनाई नहीं होती, धीरे-धीरे बनती चली जाती है। जब एक-एक स्वर रूपी ईंट को कलाकार बढ़ाते जाते हैं तो रागरूपी भवन का निर्माण होता चला जाता है। आलाप, राग का परिचय कराता है। यह एक संगीतात्मक सीढ़ी है, “इसी सीढ़ी का आधार लेकर कलाकार रागरूपी भवन तक पहुँच जाता है। यही कारण है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में आलाप का सर्वाधिक महत्व रहा, जिसे प्राचीन संगीत में रागालापि, आलापि, स्वस्थान नियम तथा अनिबद्ध गान जैसी संज्ञाएँ प्राप्त हुई है।”

डॉ० सुरेश व्रत राय ने लिखा है, षडनेपब पे मेमदजपंससल तमंसजमक जव नीनउंदे मदजपउमदजेए ढे पे दवज उमतमसल जीम वनस वितज इनज तंजीमत जीम नचतमउम मीमतेमसणि डनेपब पे तमंससल जीम बपमदबम विनदकण् अर्थात् संगीत मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा हुआ है इसमें रस ही नहीं बल्कि परम रस विद्यमान है। फिर संगीत वैज्ञानिक रूप से ध्वनि विज्ञान का विषय है क्योंकि समस्त ब्रह्मांड ध्वनि और गति से चलायमान है। ध्वनि अर्थात् नाद और गति यानि लय, नाद और लय के संयोग से संगीत कला की निर्मित होती है। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने संगीत को ब्रह्म विद्या या नाद-ब्रह्म की संज्ञा दी है।

“नाद रूपः स्मृतो ब्रह्मा”

प्राचीन जितने भी काव्य, महाकाव्य, बाल्मिकीकृत रामायण, महाभारत, तुससीदासकृत रामचरितमानस और संस्कृत भाषा के अनेक ग्रन्थ सभी गेय है यदि इनमें संगीत का पुट नहीं होता तो ये अभी तक काल के

गर्भ में समा गये होते। यह संगीत के सुर और लय का प्रवाह है कि आज तक इन महाकाव्यों के प्रति पूर्णतः रसानुभूति है। इसलिए माधुर्य ओजस और भाव प्रवणता इसके विशेष गुण माने गये हैं।

आज इलैक्ट्रॉनिक और कम्प्यूटर की दुनिया में विज्ञान चाहे कितनी भी तरक्की कर ली हो परन्तु आज भी सहृदयता, करुणा, सदयता और परस्पर सहयोग साहचर्य के लिए संगीत के सुरों की नितान्त आवश्यकता है। स्व० आचार्य बृहस्पति ने लिखा है—भाषा भले ही कभी—कभी मनोभावों की अभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाए, परन्तु नाद कभी भी असफल नहीं होता है।

संगीत द्वारा रस निष्पक्ति सरलता से की जा सकती है। अतः संगीत श्रोताओं के हृदय में आलाप तान व बंदिश के माध्यम से रस सृष्टि करने में उचित योगदान देता है।

सन्दर्भ—

- 1.संगीतायन — सीमा जौहरी
- 2.संगीत मणि — डॉ० महारानी शर्मा
- 3.निबन्ध संगीत — लक्ष्मीनारायण गर्ग
- 4.संगीत पत्रिका — हाथरस